माननीय पी. सी. जैन, कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश और न्यायमूर्ति आर.एन. मित्तल और के.एस. तिवाना से पहले

बलबीर सिंह ग्रेवाल और अन्य,-याचिकाकर्ता।

बनाम

श्री जी.पी. तापसे और अन्य,-प्रतिवादी।

1983 की संशोधित सिविल रिट याचिका संख्या 5580।

20 मार्च 1985.

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय अधिनियम (1975 का XXV) - अनुसूची - परिनियम 4(7) - कुलपति को समान अवधि के लिए कार्यकाल नवीनीकृत करने के वादे के साथ तीन साल की अवधि के लिए नियुक्त किया गया - तीन साल की समाप्ति पर कार्यकाल नवीनीकृत नहीं किया गया - उच्च न्यायालय ने कुलपति द्वारा दायर एक रिट याचिका पर कार्यकाल के नवीनीकरण का निर्देश दिया - मूल कार्यकाल की समाप्ति की तारीख से कार्यकाल को नवीनीकृत करने की अधिसूचना जारी की गई - मुकदमे की अवधि के दौरान कुलपति ने कार्य नहीं किया, हालांकि उन्होंने वेतन लिया और आनंद लिया अन्य लाभ - कुलपति को उस अवधि के लिए एक और कार्यकाल दिया गया, जिसके दौरान उन्होंने कार्य नहीं किया - कार्यकाल का ऐसा विस्तार - क्या वैध रूप से प्रदान किया जा सकता है।

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के कुलपति ने अपनी नियुक्ति के समय इस दलील पर लगातार छह साल के कार्यकाल की मांग की थी कि विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए उक्त अवधि आवश्यक थी। पहली बार में, उन्हें तीन साल की अवधि के लिए नवीनीकरण करने के वादे के साथ तीन साल का कार्यकाल दिया गया था। दूसरे कार्यकाल का नवीनीकरण नहीं किया गया था और इसलिए, उन्होंने परमादेश की एक रिट दायर की कि चांसलर को उन्हें एक और कार्यकाल देने का निर्देश दिया जाए। उच्च न्यायालय द्वारा कुलाधिपति को मूल कार्यकाल की समाप्ति की तारीख से अगले तीन वर्षों के लिए कुलपति के कार्यकाल को नवीनीकृत करने का निर्देश दिया गया था। उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष यह दावा नहीं किया कि उन्हें रिट याचिका के निर्णय की तिथि से तीन वर्ष की अवधि दी जानी चाहिए। उन्होंने हाई कोर्ट के फैसले के खिलाफ अपील भी दायर नहीं की. दूसरी ओर, कुलाधिपति और राज्य

सरकार सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील में गए और उनकी ओर से लगाए गए स्थगन के आवेदन को इस शर्त के अधीन स्वीकार कर लिया गया कि कुलपति वेतन और निवास के उपयोग के हकदार होंगे। , कार और निजी सहायक। उस स्तर पर भी उन्होंने यह दावा नहीं किया कि उनका प्राथमिक उद्देश्य विश्वविद्यालय का निर्माण करना था और जब तक उन्हें कुलपति नियुक्त नहीं किया जाता तब तक वे वेतन और अन्य सुविधाएं स्वीकार नहीं करेंगे या कि वे कुछ समय के लिए कुलपति के रूप में कार्य करने के हकदार होंगे। आगे की अवधि जिसके दौरान वह उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में लंबित कार्यवाही में कार्य नहीं कर सका। उन्होंने पिछला वेतन स्वीकार कर लिया और उन्हें प्रदान की जाने वाली अन्य सुविधाओं का आनंद लिया। बाद में वे उच्च न्यायालय के फैसले के अनुरूप कुलपति नियुक्त किये जाने पर सहमत हुए। वह उस समय दावा कर सकते थे कि उन्हें उस अवधि तक पद पर बने रहने की अनुमति दी जानी चाहिए, जिस दौरान वह काम नहीं कर सकते, लेकिन उन्होंने ऐसा कोई दावा नहीं किया। यहां तक कि जिस समय कुलाधिपति ने उच्च न्यायालय के फैसले के संदर्भ में अधिसूचना जारी की, उस समय भी उन्होंने कुलाधिपति से यह अनुरोध नहीं किया कि उन्हें अधिसूचना की तिथि से तीन वर्ष का कार्यकाल दिया जाए।

माना गया कि इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए, कुलपति को यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह कार्य अवधि के हकदार थे, जिसके लिए वह उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के समक्ष कार्यवाही लंबित होने के कारण कार्य नहीं कर सकते थे। समझौते या महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय अधिनियम, 1975 या उसके तहत बनाए गए क़ानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जिसके तहत कुलपति को दूसरे कार्यकाल से परे एक कामकाजी कार्यकाल दिया जा सके, जिसके दौरान वह कुलपति के रूप में कार्य कर सके। इसके अलावा सेवा शर्तों में कर्मचारियों के लिए सेवानिवृत्ति की आयु निर्धारित है। यह सामान्य अनुभव है कि अपनी सेवा अवधि के दौरान कभी-कभी वे कुछ अप्रत्याशित कारणों जैसे लंबी बीमारी, निलंबन आदि के कारण अपने काम पर उपस्थित नहीं हो पाते हैं। छुट्टी की समाप्ति या बहाली के बाद पुनः शामिल होने पर, उन्हें यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि वे ऐसा नहीं कर सकते हैं। वे अपने नियंत्रण से परे कारणों से कुछ अवधि के लिए काम करते हैं और इसलिए, उन्हें सेवानिवृत्ति की तारीख के बाद उसी अवधि के लिए विस्तार की अनुमति दी जानी चाहिए जिसके लिए वे काम नहीं कर सकते।

(पैरा 15, 16 एवं 17)।

(मामले को इस मामले में शामिल कानून के जटिल प्रश्नों के निर्णय के लिए माननीय श्री न्यायमूर्ति आर.एन. मित्तल और माननीय श्री न्यायमूर्ति एम.एम. पुंछी की खंडपीठ द्वारा 23 मार्च, 1984 को पूर्ण पीठ को भेजा गया था। पूर्ण माननीय कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश श्री पी. सी. जैन, माननीय श्री न्यायमूर्ति आर.एन., मित्तल और माननीय श्री न्यायमूर्ति के.एस. तिवाना की खंडपीठ ने 17 अक्टूबर 1984 को मामले की आंशिक सुनवाई की और अंततः 20 मार्च को मामले का फैसला किया। , 1985).

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत संशोधित याचिका में प्रार्थना की गई है कि इस मामले के रिकॉर्ड मंगवाए जाएं और उनका अवलोकन किया जाए: -

(i) कुलपति को हटाने के लिए अधिकार-पत्र जारी करना

श्री हरद्वारी लाल प्रतिवादी क्रमांक 2, कुलपति कार्यालय से;

(ii) विवादित अधिसूचना अनुलग्नक पी/1 और पी/2 और पी/5 को रद्द करने के लिए सर्टिओरीरी की एक रिट जारी की जाए;

(iii) भारत के संविधान और महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय (संशोधित) अधिनियम (1984 का अधिनियम संख्या 2), 1984 को अल्ट्रावाइरस घोषित करना;

(iv) उसके द्वारा जारी कोई अन्य उचित रिट, आदेश या निर्देश जो माननीय न्यायालय इस मामले की विशेष परिस्थितियों में उचित और उचित समझे;

(v) अनुलग्नकों पी-1 से पी-5 की प्रमाणित प्रतियों को दाखिल करने की छूट दी जाए;

(vi) उत्तरदाताओं पर पूर्व नोटिस की सेवा समाप्त कर दी जाए;

(vii) इस याचिका की लागत याचिकाकर्ताओं को दी जाए;

(viii) विवादित अधिसूचना अनुलग्नक पी/एल के संचालन पर रोक लगाते हुए विज्ञापन-अंतरिम आदेश जारी किया जाए;

(ix) अध्यादेश अनुलग्नक पी/2 और 1984 के अधिनियम संख्या 2 को रद्द किया जाए और इसे संविधान के अनुच्छेद 213(1) के दायरे से बाहर घोषित किया जाए:

आगे प्रार्थना की गई है कि इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी नंबर 2 श्री हरद्वारी लाल को न्याय के हित में कुलपति के कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोका जाए।

आगे प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी नंबर 1 को कुलपति के नियमों और शर्तों के लिए कोई भी अधिसूचना जारी करने से रोका जाए।

याचिकाकर्ता के वकील एच.एस.हुड्डा।

प्रतिवादी नंबर 1 और 5 के लिए हरभगवान सिंह एजी (एच) और निर्मल यादव एएजी (एच)।

जे. एल. गुप्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता, राजीव आत्मा राम और सुभाष आहूजा, प्रतिवादी संख्या 2 और 4 के वकील।

निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र नाथ मित्तल

(1) संक्षेप में तथ्य यह है कि श्री हरद्वारी लाई प्रतिवादी नंबर 2 को 27 अक्टूबर, 1977 को कुलाधिपति द्वारा तीन साल की अवधि के लिए महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (इसके बाद विश्वविद्यालय के रूप में संदर्भित) के कुलपति के रूप में नियुक्त किया गया था। प्रतिवादी नंबर 1, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय अधिनियम, 1975 (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की अनुसूची में निहित विश्वविद्यालय के पहले क़ानून के क़ानून 4(6) के तहत शक्तियों का प्रयोग इस वादे के साथ करता है कि उसका कार्यकाल होगा * समान अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया। चांसलर ने अपने वादे के मुताबिक कार्यकाल का नवीनीकरण नहीं किया। इसलिए, प्रतिवादी ने 1980 की सिविल रिट याचिका संख्या 3658 में इस आशय का आदेश दिया कि चांसलर को अन्य बातों के साथ-साथ प्रॉमिसरी एस्टोपेल के आधार पर दूसरे कार्यकाल को नवीनीकृत करने का निर्देश दिया जाए। न्यायालय ने 16 सितंबर, 1981 को रिट याचिका को इस आधार पर स्वीकार कर लिया कि प्रॉमिसरी एस्टॉपेल का सिद्धांत आकर्षित हुआ था और चांसलर को 27 अक्टूबर, 1980 से तीन साल की अवधि के लिए प्रतिवादी का कार्यकाल नया करने का निर्देश दिया। निर्णय इस प्रकार है: हरद्वारी एलएसआई बनाम जी.डी. तापसे और अन्य के रूप में रिपोर्ट किया गया।

(2) कुलाधिपति और राज्य सरकार ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में एक विशेष अनुमति याचिका (एस.एल.पी. संख्या 7941/1981) दायर की और फैसले के क्रियान्वयन पर रोक लगाने की भी प्रार्थना की। 30 सितंबर, 1981 को, न्यायालय ने प्रार्थना के अनुसार स्थगन इस शर्त के अधीन दिया कि प्रतिवादी अपने निवास, कार और निजी सहायक के उपयोग का हकदार होगा और उसे जीवन के अंत तक संपूर्ण वेतन और भत्ते का भुगतान किया जाएगा। सितंबर, 1981 एक महीने की अवधि के भीतर। विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार को विश्वविद्यालय के दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्य करने का निर्देश दिया गया। आदेश के अनुपालन में कुलसचिव ने कुलपति के कार्यों का निर्वहन शुरू कर दिया।

(3) 4 जून 1982 को, एक ओर प्रतिवादी और दूसरी ओर कुलाधिपति और राज्य सरकार के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यह सहमति हुई कि प्रतिवादी तुरंत कुलपति का पद ग्रहण करेगा। उपरोक्त रिट याचिका में इस न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में अधिसूचना जारी होने के बाद। सुप्रीम कोर्ट ने पक्षों के बीच समझौते को देखते हुए अपीलकर्ताओं को अपील वापस लेने की अनुमति दी। समझौते के संदर्भ में, चांसलर1 द्वारा 7 जून, 1982 को एक अधिसूचना जारी की गई, जिसमें प्रतिवादी को विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया और उन्होंने 8 जून, 1982 से इस रूप में कार्य करना शुरू कर दिया। अधिसूचना के अनुसार, उनका कार्यकाल, 27 अक्टूबर, 1983 को समाप्त होने वाली थी।

(4) कुलाधिपति ने - हरियाणा सरकार के राजपत्र (असाधारण) दिनांक 10 अक्टूबर, 1983 (अनुलग्नक पीएल) में प्रकाशित अधिसूचना दिनांक 10 अक्टूबर, 1983 के माध्यम से प्रतिवादी को 19 महीने की अवधि के लिए विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में बने रहने की अनुमति दी। और 28 अक्टूबर, 1983 से 6 जून, 1985 तक 10 दिन,

(5) याचिकाकर्ता संख्या 1, एक एम.एल.ए., और याचिकाकर्ता संख्या 2, जो कि कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं, ने अन्य बातों के अलावा, उपरोक्त अधिसूचना को इस आधार पर चुनौती दी है कि कुलपति तीन साल की अवधि के लिए पद पर बने रह सकते हैं। अधिनियम के तहत किस अवधि को एक से अधिक अवधि के लिए नवीनीकृत नहीं किया जा सकता है; लेकिन अधिसूचना दिनांक 10 अक्टूबर, 1983 द्वारा प्रतिवादी को 19 महीने और 10 दिन का अतिरिक्त समय दिया गया है। चांसलर के पास अधिसूचना जारी करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था, खासकर इस

न्यायालय के फैसले के मद्देनजर। आगे यह दलील दी गई है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान हरियाणा के राज्यपाल ने 1984 के अध्यादेश संख्या 7 को प्रख्यापित किया, जिसके द्वारा उन्होंने अधिनियम की धारा 9 ए की उपधारा (2) में एक प्रावधान जोड़ा, जो कहता है कि पद संभालने वाला व्यक्ति कुलपति, जिसे 1 नवंबर 1980 से पहले नियुक्त किया गया था या नियुक्त माना जाता है, वह अपनी नियुक्ति के समय लागू कानून द्वारा शासित होता रहेगा। यह आरोप लगाया गया है कि प्रावधान प्रतिवादी के लाभ के लिए जोड़ा गया था और इस तरह यह कानून का एक रंगीन टुकड़ा था और रद्द किया जा सकता था।

(6) फिर यह दलील दी गई कि अधिनियम के तहत कुलपति को केवल तीन-तीन साल के दो कार्यकाल की अनुमति दी जा सकती है। प्रतिवादी पहले ही दो कार्यकाल का आनंद ले चुका है और अब उसने विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर कब्ज़ा कर लिया है और इस तरह उसे हटाया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप यह प्रार्थना की जाती है कि 10 अक्टूबर, 1983 की अधिसूचना (अनुलग्नक पीएल) को रद्द करके उन्हें *कुलपति के पद से हटाने के लिए यथास्थिति वारंट जारी किया जाए।

(7) रिट याचिका का सभी प्रतिवादियों ने विरोध किया है, श्री जी. डी. तापसे, जो उस समय विश्वविद्यालय के चांसलर थे (प्रतिवादी संख्या 1) और उन्होंने अधिसूचना (अनुलग्नक पी.एल.) जारी की थी, ने अनुरोध किया है कि प्रतिवादी संख्या 2 ने उन्हें 28 अक्टूबर, 1980 से 6 जून, 1982 की अवधि के बदले में 19 महीने और 10 दिनों की अवधि के लिए कुलपति के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गई, जिसके दौरान वह समय पर अपने कार्यकाल के नवीनीकरण के अभाव में कार्य नहीं कर सके। अधिसूचना पूर्ण पीठ के फैसले के क्रम में एक कदम है और प्रतिवादी नंबर 2 का कार्यकाल न तो नवीनीकृत किया गया है और न ही बढ़ाया गया है। इसलिए, विवादित अधिसूचना कानून के अनुसार है। आगे दलील दी गई है कि याचिकाकर्ताओं को रिट याचिका दायर करने और बनाए रखने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि इसमें सामान्य महत्व का प्रश्न शामिल नहीं है।

(8) श्री हरद्वारी लाई, प्रतिवादी संख्या 2, ने लिखित बयान में इसी तरह की दलीलें दीं। इसके अलावा, उन्होंने कहा है कि याचिका प्रामाणिक नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं को इसे दायर करने के लिए किसी सार्वजनिक हित से प्रेरित नहीं किया गया है। दूसरी ओर यह प्रेरित है. उन्होंने दलील दी कि उन्होंने उप-सेलर का पद इस शर्त पर स्वीकार किया था कि उन्हें विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए कम से कम छह साल मिलेंगे और उस शर्त को तत्कालीन चांसलर

ने स्वीकार कर लिया था। अधिसूचना के जरिए चांसलर ने उन्हें तीन साल के दूसरे कामकाजी कार्यकाल की अनुमति दी थी। उन पर लागू कानून के अनुसार, वह इस तथ्य की परवाह किए बिना कि वे 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुके हैं और कुलपति के रूप में कार्यकाल की संख्या दो हो सकती है, कुलपति के रूप में बने रह सकते हैं।

(9) हरियाणा राज्य, प्रतिवादी संख्या 3 ने दलील दी कि पूर्ण पीठ के फैसले को पूर्ण प्रभाव देने और कुलाधिपति के आदेश को कानूनी आकार प्रदान करने के लिए, अधिनियम में आवश्यक संशोधन करना अनिवार्य हो गया है। इसलिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 213 (1) के तहत अध्यादेश प्रख्यापित किया गया था। बाद में उक्त अध्यादेश को विधानमंडल के अधिनियम में परिवर्तित कर दिया गया। हरियाणा विधानमंडल की शक्तियों के रंगीन प्रयोग में संशोधन नहीं किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि किसी भी मकसद को विधायिका के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है

(10) महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, प्रतिवादी संख्या 4, ने वही दलीलें ली हैं जो प्रतिवादी संख्या 2 ने ली हैं, और श्री एस.एम.एच. बर्नी, चांसलर (प्रतिवादी संख्या 5) ने वही दलीलें ली हैं जो श्री जी.डी. ने ली हैं। तापसे, प्रतिवादी नंबर 1।

(11) श्री हुड्डा का पहला तर्क यह है कि 10 अक्टूबर, 1983 की अधिसूचना पूर्ण पीठ के फैसले के खिलाफ है, जिसने प्रतिवादी नंबर 2 को 27 अक्टूबर, 1980 से 26 अक्टूबर, 1983 तक तीन साल के कार्यकाल की अनुमति दी थी। अधिसूचना प्रतिवादी के कार्यकाल के विस्तार के बराबर है जो चांसलर द्वारा नहीं किया जा सकता है। हो का तर्क है कि अधिसूचना शुरू से ही अमान्य है।

(12) हमने तर्कों पर विधिवत विचार किया है। विवाद का निर्णय करने के लिए कुछ प्रमुख तथ्य बताए जा सकते हैं। प्रतिवादी नंबर 2 को मूल रूप से 27 अक्टूबर, 1977 से तीन साल की अवधि के लिए कुलपति के रूप में नियुक्त किया गया था, इस वादे के साथ कि उसका कार्यकाल अगले तीन वर्षों की अवधि के लिए नवीनीकृत किया जाएगा। उन्होंने 28 अक्टूबर, 1977 को कार्यभार संभाला। हालाँकि, वादे के अनुसार कुलाधिपति द्वारा उनके कार्यकाल का नवीनीकरण नहीं किया गया। वह इस न्यायालय में एक रिट याचिका के रूप में आये जिसका कुलाधिपति और राज्य सरकार ने जोरदार विरोध किया। पूर्ण पीठ, जिसमें मैं एक पक्ष था, मामले पर काफी विस्तार से विचार करने के बाद

इस निष्कर्ष पर पहुंची कि याचिकाकर्ता 27 अक्टूबर, 1980 से तीन साल की अवधि के लिए कार्यकाल के नवीनीकरण का हकदार था। प्रासंगिक टिप्पणियाँ निम्नानुसार हैं:

"याचिकाकर्ता को 27 अक्टूबर, 1977 को तीन साल की अवधि के लिए कुलपति नियुक्त किया गया था, जिसका कार्यकाल तीन साल की एक और अवधि के लिए नवीनीकृत किया जाना था। फैसले के पहले भाग में मैं पहले ही कह चुका हूं कि याचिकाकर्ता तत्कालीन कुलाधिपति द्वारा किए गए वादे और दिए गए आश्वासन के आधार पर कार्यकाल के नवीनीकरण का हकदार है और उस निष्कर्ष के आधार पर याचिकाकर्ता पद पर बने रहने का हकदार है और रहेगा। 27 अक्टूबर, 1980 से तीन वर्ष की अगली अवधि के लिए कुलपति के रूप में बने रहने के लिए समझा जाएगा। आम तौर पर, याचिकाकर्ता पूरे कार्यकाल के लिए उस पद पर बने रहने का हकदार होगा जो अक्टूबर, 1983 के अंत में समाप्त होगा। अब 1 नवंबर, 1980 को विवादित अध्यादेश जारी करके इस कार्यकाल को अचानक कम कर दिया गया है, जिसके बाद धारा 9, धारा 9-ए पेश की गई है, जो 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने वाले व्यक्ति को कुलपति बने रहने से रोकती है। इस अध्यादेश को बाद में 26 दिसंबर, 1980 को संशोधन अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया।

अंत में यह देखा गया कि अध्यादेश और संशोधन अधिनियम की धारा 9-ए में आने वाले शब्द 'यदि वह 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है तो जारी रहेगा' भेदभावपूर्ण और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। इसे केवल एक और एक व्यक्ति की हानि के लिए संचालित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, यानी याचिकाकर्ता जिसका कार्यकाल 27 अक्टूबर, 1980 से वादे/आश्वासन के परिणामस्वरूप नवीनीकृत किया जाना था। कुलाधिपति ने बिछाने में अपने अधिकार के दायरे में काम किया था नीचे दिया गया है कि याचिकाकर्ता की शर्तों को नवीनीकृत किया जाएगा और याचिकाकर्ता ने उस वादे/आश्वासन पर काम किया है और अपनी स्थिति बदल दी है। यह एक वास्तविक वादा था - वादा बाध्यकारी होने का इरादा था, उस पर अमल करने का इरादा था और वास्तव में उस पर अमल किया जाना था। परिणामस्वरूप रिट याचिका स्वीकार कर ली गई और कुलाधिपति को निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए:

".....रिट याचिका स्वीकार की जाती है और एक निर्देश दिया जाता है

27 अक्टूबर, 1980 से कुलपति के रूप में याचिकाकर्ता के कार्यकाल को नवीनीकृत करने की अधिसूचना जारी करने के लिए विश्वविद्यालय के चांसलर, प्रतिवादी नंबर 1 को जारी किया गया।

(आईपी) चांसलर और राज्य सरकार ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की, जिसमें इस न्यायालय के फैसले के कार्यान्वयन पर रोक लगाने की प्रार्थना की गई। सुप्रीम कोर्ट ने 30 सितंबर, 1981 को याचिकाकर्ता को छुट्टी देते हुए निम्नलिखित शर्तों के साथ स्टे की अनुमति दी:

"अपील के लिए विशेष अनुमति दी जाती है। 16 सितंबर, 1981 के उच्च न्यायालय के फैसले के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी गई है। इस न्यायालय के अगले आदेश तक विश्वविद्यालय के कुलाधिपति को, उच्च न्यायालय के निर्देशानुसार, प्रतिवादी के कार्यकाल को कुलपति के रूप में नवीनीकृत करने की अधिसूचना जारी करने की आवश्यकता नहीं है। तदनुसार, प्रतिवादी इस न्यायालय के अगले आदेश तक कुलपति के रूप में कार्य करने का हकदार नहीं होगा। हालाँकि, हम निर्देश देते हैं कि प्रतिवादी उस निवास के निरंतर उपयोग का हकदार होगा जिसे वह कुलपति के रूप में उपयोग कर रहा था और वह उस कार के उपयोग का भी हकदार होगा जिसे वह कुलपति के रूप में उपयोग कर रहा है। प्रतिवादी को उसकी पसंद के निजी सहायक की सेवाओं की सुविधा भी दी जाएगी। सितंबर, 1981 के अंत तक प्रतिवादी को देय संपूर्ण वेतन और भत्ते का भुगतान आज से एक महीने के भीतर किया जाएगा। इस न्यायालय के अगले आदेश तक, विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार विश्वविद्यालय के दैनिक प्रशासनिक कार्य करेंगे। ....."

पार्टियों ने 4 जून, 1982 को एक समझौता किया, जिसके अनुसार पूर्ण पीठ के आदेश के अनुसार प्रतिवादी नंबर 2 को तीन साल का एक और कार्यकाल दिया गया। समझौते के दृष्टिगत अपील का तदनुसार निस्तारण कर दिया गया। समझौते की प्रासंगिक शर्तें नीचे दी गई हैं:

"प्रतिवादी नंबर 1, 1980 की सिविल रिट याचिका संख्या 3658 में 16 सितंबर, 1981 के उच्च न्यायालय के फैसले के संदर्भ में अधिसूचना जारी होने के तुरंत बाद कुलपति का पद ग्रहण करेगा। अधिसूचना 5 दिनों के भीतर जारी की जाएगी उपरोक्त अपील का निर्णय।"

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पक्ष इस बात पर सहमत थे कि प्रतिवादी नंबर 2 का कार्यकाल 27 अक्टूबर, 1980 से तीन साल की अवधि के लिए नवीनीकृत किया जाना था और उस संबंध में अधिसूचना 5 के भीतर जारी की जानी थी। समझौते के दिन. समझौते के अनुसरण में विश्वविद्यालय के चांसलर ने 7 जून, 1982 को निम्नलिखित अधिसूचना जारी की:

"1980 की सिविल रिट याचिका संख्या 3658 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के 16 सितंबर, 1981 के फैसले के अनुसार और 1981 की सिविल अपील संख्या 2687 में सुप्रीम कोर्ट में दायर समझौता ज्ञापन के संदर्भ में, 4 जून, 1982 को निर्णय लिया गया, और, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय अधिनियम, 1975 की अनुसूची में निहित क़ानून 4 के खंड (7) द्वारा मुझे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के चांसलर, आई.जी.डी. तापसे ने एतद्द्वारा नवीनीकरण किया 21 अक्टूबर, 1980 से तीन वर्ष की अवधि के लिए महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक के कुलपति के रूप में श्री हरद्वारी एलक्यूडी की नियुक्ति की अवधि।

2. उनकी नियुक्ति के नियम और शर्तें अलग से जारी की जाएंगी। (जोर रेखांकित करके दिया गया है)।

(14) समझौते की भाषा और अधिसूचना से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी नंबर 2 का कार्यकाल 27 अक्टूबर 1980 से तीन साल की अवधि के लिए नवीनीकृत किया गया था। इस प्रकार यह कार्यकाल 26 को समाप्त होना था। अक्टूबर, 1983. 10 अक्टूबर, 1983 को कार्यकाल समाप्त होने से पहले चांसलर ने एक और अधिसूचना जारी की, जिसमें प्रतिवादी नंबर 2 को 28 अक्टूबर, 1983 से 6 जून, 1985 तक 19 महीने और 10 दिन का समय दिया गया, इस आधार पर कि वह ऐसा कर सकता था। समय पर अपने कार्यकाल के नवीनीकरण के अभाव में कुलपति के रूप में कार्य नहीं करेंगे। चांसलर ने इसे किस अधिकार के तहत जारी किया, इसका जिक्र नहीं है. आम तौर पर अधिसूचना जारी करते समय चांसलर अपनी शक्ति के स्रोत का उल्लेख करते हैं। यह समझ में नहीं आता कि इस मामले में उनके द्वारा बिजली के स्रोत का जिक्र क्यों नहीं किया गया. इस स्तर पर 10 अक्टूबर, 1983 की आक्षेपित अधिसूचना (अनुलग्नक पीएल) पर ध्यान देना प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:

"नहीं। एचआरबी-डीएसआरबी-21(1) (19)-83/4968/73.—कुलाधिपति, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय (राज्यपाल, हरियाणा), श्री हरद्वारी लाई, कुलपति, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक को पद पर बने रहने की अनुमति देते हुए प्रसन्न हैं। 28 अक्टूबर, 1983 से 6 जून, 1985 तक 19 महीने और 10 दिनों की अवधि के लिए, 28 अक्टूबर, 1980

से 6 जून, 1982 तक की अवधि के बदले में, जिसके दौरान श्री हरद्वारी लाई कुलपति के रूप में कार्य नहीं कर सके, समय पर अपने कार्यकाल के नवीनीकरण के अभाव में।

2. अन्य नियम और शर्तें अलग से जारी की जाएंगी। •

नियुक्ति के नियम और शर्तें कुलाधिपति द्वारा जारी किए गए थे, - 21 अक्टूबर के आदेश के तहत; 1882 और 9 नवंबर, 1983. दोनों आदेशों में स्टाफ कार और सुसज्जित घर के उपयोग, चिकित्सा उपचार और छुट्टी से संबंधित शर्तें समान थीं। वेतन के संबंध में पहले आदेश में प्रावधान किया गया था कि प्रतिवादी रुपये पाने का हकदार होगा. 3,000 प्रति माह और यह कि उच्चतम न्यायालय के 30 सितंबर, 1981 के आदेशों के अनुसार उन्हें पहले से भुगतान की गई राशि को 27 अक्टूबर, 1980 से शुरू होने वाली तीन साल की अवधि के लिए वेतन और भत्ते देते समय समायोजित किया जाएगा। यह भी प्रावधान किया गया था कि उन्हें रुपये की दर से सत्कार भत्ता का भुगतान किया जाएगा. 8 जून, 1982 से प्रति माह 250 रुपये। दूसरे आदेश में कहा गया कि वेतन के बदले प्रतिवादी को रुपये का भुगतान किया जाएगा।' 500 प्रति माह का मानदेय, जिसमें सत्कार भत्ता भी शामिल है। इस पृष्ठभूमि के साथ मामले की जांच की जानी है।

(15) मामले का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि प्रतिवादी नंबर 2 ने इस दलील पर लगातार छह साल की अवधि की मांग की कि विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए उक्त अवधि आवश्यक थी। पहली बार में उन्हें तीन साल का कार्यकाल दिया गया और इस वादे के साथ कि इसे अगले तीन साल के लिए नवीनीकृत किया जाएगा। दूसरे कार्यकाल का नवीनीकरण नहीं किया गया था और इसलिए, उन्होंने एक परमादेश रिट दायर की कि चांसलर को उन्हें तीन साल का एक और कार्यकाल देने का निर्देश दिया जाए। रिट पर 16 सितंबर, 1981 को निर्णय लिया गया और एक निर्देश जारी किया गया कि प्रतिवादी का कार्यकाल 27 अक्टूबर, 1980 से नवीनीकृत किया जाए। उन्होंने पूर्ण पीठ के समक्ष यह दावा नहीं किया कि उन्हें तीन साल की अवधि दी जानी चाहिए। रिट याचिका के निर्णय की तिथि. उन्होंने पूर्ण पीठ के फैसले के खिलाफ कोई अपील भी दायर नहीं की, जो बिना किसी संदेह के साबित करता है कि उन्हें इसके खिलाफ कोई शिकायत नहीं थी। दूसरी ओर, चांसलर और राज्य सरकार सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील में चले गए। उनकी ओर से लगाई गई रोक की अर्जी को सुप्रीम कोर्ट ने इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि प्रतिवादी वेतन और निवास कार और निजी सहायक के उपयोग का हकदार है। उस स्तर पर भी उन्होंने यह नहीं कहा कि उनका

प्राथमिक उद्देश्य विश्वविद्यालय का निर्माण करना है और जब तक उन्हें कुलपति नियुक्त नहीं किया जाता तब तक वे वेतन और अन्य सुविधाएं स्वीकार नहीं करेंगे और वे कुछ समय के लिए कुलपति के रूप में कार्य करने के हकदार होंगे। आगे की अवधि जिसके दौरान मामला उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित रहा। बल्कि उन्होंने पिछला वेतन स्वीकार कर लिया और उन्हें प्रदान की जाने वाली अन्य सुविधाओं का आनंद लिया। यह इस बात का सूचक है कि जिस अवधि में उन्होंने वेतन लिया, उस अवधि में उन्हें पद पर माना जाएगा। बाद में समझौते के समय वे उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुरूप कुलपति नियुक्त किये जाने पर सहमत हुए। वह उस समय यह दावा कर सकते थे कि उन्हें 19 महीने और 10 दिन और की अवधि तक पद पर बने रहने की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि उस अवधि के दौरान वह कार्य नहीं कर सकते थे, लेकिन सर्वविदित कारणों से उन्होंने ऐसा नहीं किया। यहां तक कि उच्च न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में कुलाधिपति द्वारा दिनांक 7 जून, 1982 की अधिसूचना जारी करते समय भी उन्होंने कुलाधिपति से यह अनुरोध नहीं किया कि उन्हें अधिसूचना की तिथि से तीन वर्ष का कार्यकाल दिया जाए। उन्होंने फैसले के निहितार्थों को अच्छी तरह से समझा। पहले एक अवसर पर उन्होंने कुलाधिपति को यहां तक लिखा था कि यदि उनकी सेवाओं की अब आवश्यकता नहीं है, तो उन्हें शेष अवधि के लिए वेतन का भुगतान किया जाना चाहिए। पूर्ण पीठ के फैसले के बाद उन्होंने आदेश के अनुरूप वेतन और अन्य लाभ स्वीकार कर लिये

सर्वोच्च न्यायालय- यदि उनकी रुचि केवल विश्वविद्यालय के निर्माण में थी, तो उनसे यह अपेक्षा नहीं की जाती थी कि वे कुलपति के रूप में बहाल होने तक इससे वेतन और अन्य लाभ स्वीकार करते। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता, कि वह विस्तारित अवधि के लिए कोई वेतन लेने का इरादा नहीं रखता है, लेकिन रुपये की राशि का मानदेय लेने का इरादा रखता है। 500 प्रति माह। हालाँकि, अन्य लाभ वह अभी भी उठाएँगे। उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए, उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह 10 महीने और 10 दिन की अतिरिक्त शर्तों का हकदार है।

(16) उत्तरदाताओं के वकील का तर्क यह है कि प्रतिवादी नंबर 2 को पूरे दूसरे कार्यकाल के लिए कार्य करने की अनुमति नहीं दी गई थी और इसलिए, उसे उस अवधि के लिए कार्य करने की अनुमति दी गई थी, जिसके लिए वह काम नहीं कर सका था। आगे यह भी तर्क दिया गया कि वह इस शर्त पर कुलपति के रूप में शामिल हुए कि उन्हें

विश्वविद्यालय के निर्माण के लिए कम से कम छह साल मिलेंगे। कुलाधिपति ने जो कुछ किया वह उन्हें तीन साल के दूसरे कामकाजी कार्यकाल की अनुमति देना था। हमारे मन का विवाद पूरी तरह से किसी भी बल से रहित है। कारण ऊपर पहले ही दिए जा चुके हैं और उन्हें दोबारा संदर्भित करना आवश्यक नहीं है। हमारा ध्यान समझौते के किसी भी प्रावधान की ओर नहीं लाया गया है, कि प्रतिवादी कामकाजी अवधि का हकदार था। अधिनियम या क़ानून में ऐसा कोई शब्द प्रदान नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप हम प्रस्तुतीकरण को अस्वीकार करते हैं।

(17) मामले की जांच दूसरे एंगल से की जा सकती है. आमतौर पर सेवा शर्तों में कर्मचारियों के लिए सेवानिवृत्ति की आयु निर्धारित की जाती है। यह सामान्य अनुभव है कि अपनी सेवा अवधि के दौरान कभी-कभी उनमें से कुछ लोग किसी अप्रत्याशित कारण जैसे लंबी बीमारी, निलंबन आदि के कारण काम पर नहीं आ पाते हैं। छुट्टी समाप्त होने के बाद या बहाली पर पुनः शामिल होने पर, उन्हें यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि वे अपने नियंत्रण से परे कारणों से कुछ अवधि के लिए काम नहीं कर सके और इसलिए, उन्हें सेवानिवृत्ति की तारीख के बाद उसी अवधि के लिए विस्तार की अनुमति दी जानी चाहिए जिसके लिए वे काम नहीं कर सके। यदि उस सिद्धांत का पालन किया गया तो एक विषम स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हमारे विचार से ऐसा नहीं किया जा सकता.

(18) उस स्थिति का सामना करते हुए, उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने आग्रह किया कि 1984 के अधिनियम 2 द्वारा जोड़ी गई धारा 9ए के दूसरे प्रावधान के मद्देनजर, प्रतिवादी नंबर 2 उन क़ानूनों द्वारा शासित था जो तब लागू थे जब उन्हें कुलपति के रूप में नियुक्त किया गया था। . उनका कहना है कि क़ानून 4 के खंड 7 के अनुसार, चांसलर प्रतिवादी नंबर 2 को एक और कार्यकाल देने का हकदार था और 19 महीने और 10 दिनों की अवधि को एक और कार्यकाल माना जा सकता है। के लिए विद्वान वकील. जवाब में याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है कि 10 अक्टूबर, 1983 (अनुलग्नक पीएल) की अधिसूचना जारी करते समय चांसलर ने क़ानून 4 के खंड 7 के तहत शक्तियों का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि उक्त खंड के तहत चांसलर एक बार कार्यकाल को नवीनीकृत कर सकते हैं और इसलिए, एक बार कार्यकाल नवीनीकृत होने के बाद वह उसे 19 महीने और 10 दिन की अतिरिक्त अवधि नहीं दे सका।

(19) हमें उत्तरदाताओं के विद्वान वकील की इस दलील में भी कोई तथ्य नहीं मिला। नोटिफिकेशन दिनांक 7. जून, 1982 और 10 अक्टूबर, 1983 को पहले ही ऊपर देखा जा चुका है। 7 जून, 1982 को अधिसूचना जारी करते समय

चांसलर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पूर्ण पीठ के फैसले और क़ानून 4 के खंड 7 के तहत उन्हें प्रदत्त शक्तियों के मद्देनजर वह तीन साल की अवधि के लिए कार्यकाल का नवीनीकरण कर रहे थे, लेकिन दिनांक अधिसूचना (अनुलग्नक पीएल) जारी करते समय। 10 अक्टूबर, 1983 को उन्होंने केवल इतना कहा कि वह उस अवधि के बदले में प्रतिवादी नंबर 2 को कुलपति के रूप में 9 महीने और 10 दिन का समय दे रहे हैं, जिसके दौरान वह इस तरह कार्य नहीं कर सके। बाद की अधिसूचना की भाषा से यह स्पष्ट है कि उन्होंने उक्त क़ानून के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया। अपने उत्तर में भी कुलाधिपति ने यह नहीं बताया कि उनके द्वारा उक्त परिनियम के तहत शक्ति का प्रयोग किया गया है। इसलिए, हम उत्तर के माध्यम से श्री हुडा की प्रस्तुति के पहले भाग से सहमत हैं और मानते हैं कि 10 अक्टूबर, 1983 को अधिसूचना जारी करते समय चांसलर ने क़ानून 4 के खंड 7 के तहत शक्तियों का प्रयोग नहीं किया।

(20) उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर श्री हुडा की अन्य दलीलों पर गौर करना जरूरी नहीं है कि चांसलर नवीनीकरण के बाद प्रतिवादी संख्या 2 के कार्यकाल को 19 महीने और 10 दिन की अवधि के लिए नवीनीकृत नहीं कर सकते। एक बार अवधि. उपरोक्त सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद हमारी राय है कि 10 अक्टूबर, 1983 की अधिसूचना पूर्ण पीठ के फैसले के खिलाफ है और इसलिए, यह अमान्य है।

(21) श्री हुड्डा ने आगे तर्क दिया कि विवादित अधिसूचना न तो सार्वजनिक हित में थी और न ही विश्वविद्यालय के हित में थी। दूसरी ओर, यह प्रेरित था और श्री हरद्वारी लाई प्रतिवादी को लाभ पहुंचाने के लिए था। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि अधिनियम की धारा 9ए(2) के तहत चांसलर एक अवधि के लिए विस्तार दे सकते हैं जो न तो तीन साल से कम और न ही अधिक हो सकती है। उनके अनुसार, प्रतिवादी नंबर 2 को दिया गया 19 महीने और 10 दिनों का विस्तार उक्त धारा के प्रावधानों के खिलाफ था। उन्होंने 1984 के हरियाणा अधिनियम संख्या 2 की शक्तियों को इस आधार पर चुनौती दी है कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है और इसके द्वारा जोड़ा गया प्रावधान मुख्य धारा को निरस्त करता है। हमारी राय में, पहले बिंदु पर निर्णय के मद्देनजर तर्क-वितर्क की जरूरत नहीं है। इसलिए, हम श्री हुडा द्वारा उठाए गए बिंदुओं से निपटने का प्रस्ताव नहीं रखते हैं।

(22) फैसले से अलग होने से पहले हम श्री गुप्ता द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति देख सकते हैं। यह है कि याचिका प्रामाणिक नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं को याचिका दायर करने के लिए किसी सार्वजनिक हित से प्रेरित नहीं

किया गया है। उनके मुताबिक, याचिका प्रेरित है. उनका कहना है कि इस संक्षिप्त आधार पर याचिका खारिज किये जाने योग्य है। अपने तर्क के समर्थन में वह एस. पी. गुप्ता और अन्य बनाम भारत के राष्ट्रपति और अन्य पर भरोसा करते हैं।

(23) हमने तर्क पर विधिवत विचार किया है। श्री गुप्ता ने एस.पी. गुप्ता के मामले में पैरा का संदर्भ दिया जिसमें यह देखा गया है कि जो व्यक्ति सार्वजनिक हित में न्यायिक निवारण के लिए न्यायालय का रुख करता है, उसे न्याय के उद्देश्य की पुष्टि करने की दृष्टि से ईमानदारी से कार्य करना चाहिए और यदि वह व्यक्तिगत रूप से कार्य कर रहा है लाभ या निजी लाभ या राजनीतिक प्रेरणा या अन्य परोक्ष विचार के कारण, न्यायालय को ऐसे व्यक्ति के कहने पर खुद को प्रेरित नहीं होने देना चाहिए और उसके आवेदन को शुरुआत में ही खारिज कर देना चाहिए, चाहे वह पत्र के रूप में हो। न्यायालय या यहां तक कि न्यायालय में दायर नियमित रिट याचिका के रूप में भी। हालाँकि, बाद के पैरा में यह भी देखा गया है कि ऐसे मामले सामने आ सकते हैं जहां राज्य या सार्वजनिक प्राधिकरण के कार्य या चूक से निस्संदेह सार्वजनिक क्षति होती है, लेकिन इस तरह के कार्य या चूक से किसी व्यक्ति या किसी विशिष्ट वर्ग को विशिष्ट कानूनी चोट भी लगती है। या व्यक्तियों का समूह. ऐसे मामलों में, पर्याप्त हित रखने वाला जनता का कोई सदस्य निश्चित रूप से ऐसे कार्य या चूक की वैधता को चुनौती देने वाली कार्रवाई कर सकता है।

(24) इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जनता को प्रभावित करने वाली चोट के मामले में, कुछ हित रखने वाला सार्वजनिक व्यक्ति सरकार की कार्रवाई को चुनौती देने वाली कार्रवाई कर सकता है। उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में वर्तमान मामले के तथ्यों की जांच की जानी है। याचिकाकर्ताओं की ओर से दुर्भावना दिखाने के लिए, प्रतिवादी नंबर 2 ने जवाब में आरोप लगाया है कि एक डॉ. भीम सिंह दहिया एक बार एम.डी. विश्वविद्यालय, रोहतक में कार्यरत थे, जिनकी सेवाएं उनके कहने पर विश्वविद्यालय द्वारा समाप्त कर दी गई थीं। तभी से डॉ. भीम सिंह दहिया उन्हें बदनाम कर रहे थे। बाद में वह एक शिक्षक के रूप में कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय में शामिल हुए और याचिकाकर्ता डॉ. सूरजभान उस विश्वविद्यालय में उनके सहयोगी हैं। श्री बलबीर सिंह ग्रेवाल, एम.एल.ए. विधानसभा में डॉ. दहिया के सहयोगी और पार्टी नेता हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. भीम सिंह दहिया के कहने पर याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका को छुपाया है।

(25) यह और भी स्पष्ट है कि डॉ. सूरजभान को भी उनसे अपनी शिकायत थी। 1900-01 में वे (प्रतिवादी संख्या 2) कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुलपति थे। डॉ. सूरजभान उस विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर नियुक्त होना चाहते थे, लेकिन उन्होंने डॉ. सूरजभान को रीडर की नौकरी के लिए उपयुक्त नहीं समझा और इसलिए उन्होंने उनकी उम्मीदवारी का समर्थन नहीं किया। विश्वविद्यालय छोड़ने के बाद, डॉ. सूरजभान रीडर के रूप में कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय में शामिल होने में कामयाब रहे। बाद में जब प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रोफेसर डॉ. बुद्ध प्रकाश की अचानक मृत्यु हो गई, तो डॉ. सूरजभान ने विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त होने का प्रयास किया। तत्कालीन कुलपति ने उन्हें एक गोपनीय पत्र लिखा कि 1961 में डॉ. सूरजभान को रीडर के रूप में क्यों स्वीकार नहीं किया गया। उन्होंने कुलपति को लिखा कि उनकी राय में डॉ. सूरजभान नियुक्ति के योग्य भी नहीं हैं। यहां तक कि रीडर के रूप में प्रोफेसर की तो बात ही मत कीजिए। ऐसे में डॉ. सूरजभान उनसे क्षुब्ध रहने लगे थे।

(26) प्रतिकृति में याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 2 के आरोपों से इनकार किया है। उन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ अनुरोध किया है कि वे हरियाणा राज्य में सभी सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक मामलों में रुचि लेते हैं, उन्होंने जनहित में याचिका दायर की है और यह किसी भी तरह से प्रेरित नहीं है। आगे दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता नंबर 2 को एमए पास करने के बाद 1962 में पंजाब विश्वविद्यालय में लेक्चरर के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता कभी भी 1962 में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में रीडर के रूप में नियुक्त नहीं होना चाहता था और आरोप है कि प्रतिवादी ने ऐसा नहीं किया। उन्हें रीडर पद के लिए उपयुक्त समझना और उनकी उम्मीदवारी का समर्थन न करना गलत और प्रेरित था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने उन वर्षों में नौकरी के लिए प्रतिवादी नंबर 2 से संपर्क किया था। उन्होंने इन आरोपों से भी इनकार किया कि प्रतिवादी नंबर 2 ने उनके खिलाफ कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के कुलपति को कोई पत्र लिखा था।

(27) इस प्रकार याचिकाकर्ताओं के खिलाफ प्रतिवादी नंबर 2 का मुख्य आरोप यह है कि वे डॉ. दहिया के दोस्त हैं जिन्हें उनसे शिकायत थी। हमें यह आरोप बेबुनियाद लगता है।' डॉ. सूरज भान के खिलाफ प्रतिवादी नंबर 2 के अन्य आरोपों को सूरज भान ने जोरदार ढंग से खारिज कर दिया है। प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा आरोपों के समर्थन में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में इस संबंध में उनके आईपीएसी दीक्षित को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरूप हमारी राय है कि उत्तरदाता यह साबित करने में विफल रहे हैं कि याचिका

प्रेरित है। याचिकाकर्ता नंबर 1 एक एम.एल.ए. है। और इसलिए, वह सार्वजनिक मामलों में रुचि रखते हैं। याचिकाकर्ता नंबर 2 एक शिक्षाविद् है और इसलिए उसे राज्य के विश्वविद्यालयों और अन्य शैक्षणिक संस्थानों में रुचि है। इसलिए, यदि राज्य में किसी विश्वविद्यालय के कुलपति की नियुक्ति ठीक से नहीं की गई है, तो उन्हें चिंता होती है। इसलिए, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता को याचिका दायर करने का अधिकार है और सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियां जिन पर श्री गुप्ता ने भरोसा जताया है, वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होती हैं।

(28) उपरोक्त कारणों से हम रिट याचिका स्वीकार करते हैं, 10 अक्टूबर, 1983 की लागू अधिसूचना (अनुलग्नक पी.1) को रद्द करते हैं और प्रतिवादी संख्या 2 को कुलपति के रूप में कार्य करने से रोकने के लिए अधिकार वारंट की रिट जारी करते हैं। महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय. हालाँकि, मामले की परिस्थितियों में आप लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं देते हैं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

आयुष गर्ग

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

पलवल, हरियाणा